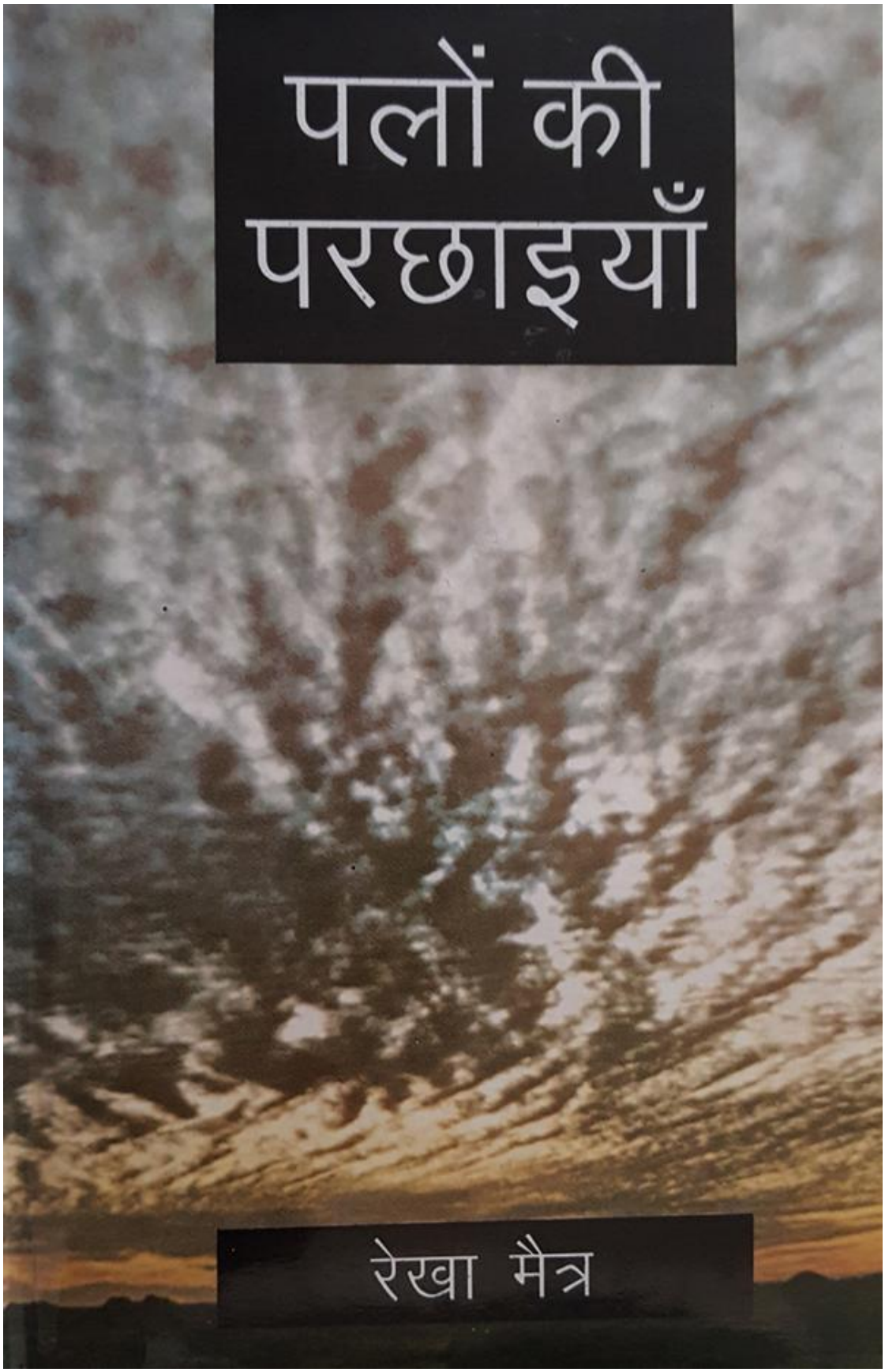
पलों की
परछाइयाँ
रेखा मैत्र

खोना किसी भी चीज़ का हो, बड़े नुकसान की बात है। लेकिन कभी यूं भी होता है कि खोया हुआ कंचा जब पाया, तो उस गुत्थी से और बहुत-से कंचे निकल आएं। ऐसा ही कुछ रेखा जी की कविताओं के साथ हुआ...चंद कविताएं मिली थीं कि मैं एक पेश-लफ़्ज़ लिख दूं। वो कविताएं मुझसे खो गईं और कुछ लिखा था, वो भी गुम हो गया। इस बीच अमरीका गया। तो न्यूयॉर्क में रेखा जी से मुलाकात हो गई। उनकी कविताएं उनकी ज़बान से सुनकर और ही मज़ा आया। मेरे लिए उन कविताओं की क़द्र बढ़ गई। कविताएं अच्छी थीं ही। लेकिन उनमें रेखा जी का लहज़ा, आवाज़ और अंदाज़ भी शामिल हो गया। अब इन कविताओं को पढ़नेवाले उनकी आवाज़ तो न सुन सकेंगे। लेकिन उनके लहजे का अंदाज़ा वो उनके अलफ़ाज़ के चुनाव और बहर (मीटर) के बहाव से कर सकते हैं। वो बयक-वक़्त सरल भी हैं और मुश्किल भी। सरल इसलिए हैं कि उनकी उपमाएं रोज़मर्रा की ज़िंदगी से उठाई हुई हैं और मुश्किल इसलिए कि रोज़मर्रा की मामूली सी बात के पीछे वो कोई न कोई जिंदगी का बड़ा असरार (रहस्य) खोल देती हैं।

— *गुलज़ार*

परिचय

ज़िन्दगी की पाठशाला में,
मेरा अध्यापक वक़्त–
रोज़ मेरे सामने एक नया अध्याय खोलता,
मुझसे ही मेरी नई पहचान कराता रहा।

कभी जाना था–
मैं एक काँच की गुड़िया हूँ
ज़रा सी ठेस मुझे तोड़-फोड़ कर
मेरी किरचें बिखेर सकती है।

वक़्त की कड़ी धूप में,
रेत पर अनवरत चलते
मेरे नंगे पाँव झुलस तो गए
रुके नहीं।

तब मैंने जाना–
इतनी नाजुक भी नहीं
जो मोम-सी पिघल जाऊँ मैं।

गुज़रते तूफानों से पुख्तगी मिली मुझे,
काँच और मोम से अलग
मैं अब वनलता हूँ–
जब जी चाहे, जहाँ जी चाहे
पनप सकती हूँ।

गुज़रते तूफानों से पुख्तगी मिली मुझे,
काँच और मोम से अलग
मैं अब वनलता हूँ–
जब जी चाहे, जहाँ जी चाहे
पनप सकती हूँ।

शुभकामना

क्या दूँ तुम्हें तुम्हारे जन्मदिन पर ?
आज का दौर चोटों का दौर है।
चोटें घायल करती हैं।
बाहर से ठीक तो हो जाती हैं–
भीतर निशान छोड़ जाती हैं।
ये चोटें तुम्हें आहत न करें
ऐसा मैं मनाऊँगी !

थोड़ी-बहुत, हम सबमें
दूसरों को चोट पहुँचाने की
ताक़त मौजूद है।
प्रभु से तुम्हारी उस ताक़त को
कम करने की कामना करती हूँ मैं।

अलविदा

सुना था ज़िन्दगी,
सबको एक मौक़ा देती है।
कहाँ दिया तुम्हें अलविदा कहने का
मौक़ा ज़िन्दगी ने।
खुद से खुद को सवाल आते हैं
क्यों ? क्यों ? ? क्यों ? ? ?
बड़ी देर बाद आज जाना है
तुमने विदा ली ही कहाँ ?
मेरे दुःख में मेरे साए की तरह
मेरे साथ-साथ होते हो।
जब कहीं थकी-हारी हूँ–
तुम्हारे हाथ मुझे थाम लेते हैं।
मेरे चारों ओर छाई होती है
तुम्हारे आशीषों की खुशबू ! !

नीड़

चलो, शहर से दूर चलें–
इसका दिल इसकी गलियों-सा तंग है।
हमें हमारा गाँव मुबारक़ !

कभी इन वीपिंगविलो* की लम्बी क़तारों ने
हमारे स्वागत को अपनी बेचैन बाँहें पसार ली थीं

आज फिर वही चिरपरिचित गुलमोहर
आवाज दे रहा है।
गुलमोहर की महकती साँसों ने
मेरे तन-मन में दीवानगी भर दी है।
मेरे दोस्त–'वीपिंगविलो' !
माफ़ करना मुझे
तुम्हारे दुःखों को कम न कर सकी मैं ! !

* अमरीका में पाया जानेवाला एक वृक्ष, हवाओं के तेज़ चलने पर इससे रोने का स्वर आता है।

ट्यूलिप

मेरे ख़याल में
प्यार की तासीर
ट्यूलिप के फूलों-सी होती है।
भीतर चुपचाप पड़े होते हैं निर्जीव-से
ऊष्म अहसास मिलते ही—
खिल उठते हैं।
बाँध लेते हैं मन को चारों ओर से!

ट्यूलिप

मेरे ख़याल में
प्यार की तासीर
ट्यूलिप के फूलों-सी होती है।
भीतर चुपचाप पड़े होते हैं निर्जीव-से
ऊष्म अहसास मिलते ही—
खिल उठते हैं।
बाँध लेते हैं मन को चारों ओर से !

अहल्या

मन की भीतरी परतों में
पथराए अहसास जमा रहते हैं ज़रूर
किसी राम की अनवरत तलाश में।
कभी जब किसी राम का स्पर्श मिलता है।
स्पन्दन आ जाता है तब उन अहसासों में।

नीलात्मा

नीलकण्ठ !

गरलपान की करुण-गाथा
तुम्हारे नीले कण्ठ पर स्पष्ट दीख पड़ती है।
वही तुम्हारे इस नाम को सार्थक भी करती है न ?

सुनो,
वचन-दंश जब,
मानव की आत्मा तक को डस लेते हैं
उस मानव को नीलात्मा नाम क्यों नहीं मिलता ?
उसकी बाहरी पहचान क्यों नहीं बनती ?
ये दोहरे मानदण्ड क्यों ?

पूर्णता

ज़िन्दगी !

मैंने तुझे पूरा का पूरा चाहा है।
खण्डों में बाँटा नहीं, खेमे तैयार नहीं किए
जब जो कुछ भी मिला, अंजलियों में भर-भर समेट लिया !
सुख-दुःख का बराबर से जश्न मनाया है।
सुख तरंग-सा मन के ऊपर बुलबुले सा छा जाता है।
दुःख आत्मा की भीतरी परतों में गहरा जाता है।

मन के बादलों में···

मैं तुम्हें प्यार तो करती हूँ
पर, कभी तुम्हारा खुरदुरापन,
कंकड़ सा आकर मेरा ज़ायका ख़राब कर जाता है
मैं कंकड़ को बीन लेती हूँ तब
स्वाद फिर सामान्य हो आता है।

यक़ीनन मेरा भी कुछ, कहीं से
किरकिरी सा लगता होगा तुम्हारी आँखों को–
तुम उसे कैसे झेलते होगे ?
अक़्सर ये ख़याल घुमड़ता है
मन के बादलों में···!

प्रश्न

दूरदर्शन की ख़बर के अनुसार–
आज के तापमान में, महज़ सात मिनट;
समूची देह को जमाने के लिए काफ़ी हैं।
हठात् ख़याल आया–
भीतर के खुरदुरे अहसासों को
जमाने के लिए
बाहर के सारे तापमान नाकाफ़ी क्यों हैं ?

शिशु

आसपास फैले आतंक से बेख़बर
नन्ही मासूम आँखों में
विश्व का विश्वास समेटे
फैले हाथों से अपनी अनमोल निधि
चॉकलेट लुटाता हुआ
वह शिशु कुबेर-सा दीख पड़ता है मुझे।

अपने ठुमकते पाँवों में,
समूचे जगत् की ताक़त समेटे
किसी बन्दूकधारी की बन्दूक को
खिलौना समझ लपकता हुआ
असीम प्यार में डूबी
नज़रों से ताकता है मुझे !

जाने क्यों फिर बार-बार
उसके विश्वास पर विश्वास करने को
जी चाहता है।
तब, नहीं लगता

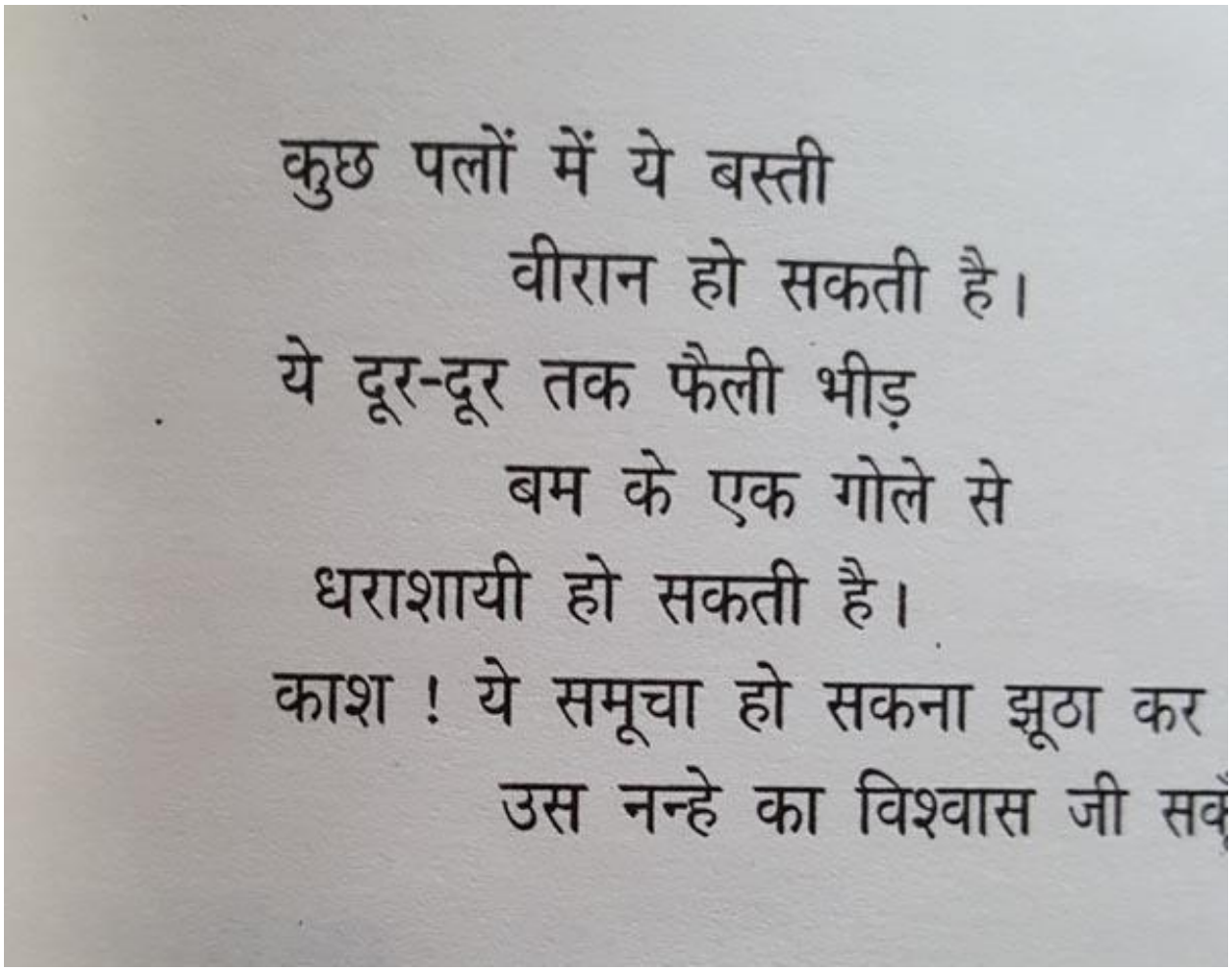

कुछ पलों में ये बस्ती
वीरान हो सकती है।
ये दूर-दूर तक फैली भीड़
बम के एक गोले से
धराशायी हो सकती है।
काश ! ये समूचा हो सकना झूठा कर
उस नन्हे का विश्वास जी सके

कुछ पलों में ये बस्ती
वीरान हो सकती है।
ये दूर-दूर तक फैली भीड़
बम के एक गोले से
धराशायी हो सकती है।
काश ! ये समूचा हो सकना झूठा कर सकूँ !
उस नन्हे का विश्वास जी सकूँ !

होली

आज मन उदास है !
यहाँ डैफोडिल और ट्यूलिप खिले हैं
टेसू नहीं !
पर, होली यहाँ भी है।
तन के रंग तो यूँ भी कच्चे होते हैं–
सो, मन रंग डाला है प्यार के पक्के रंग में !
जिसके छूटने का कोई डर नहीं
माहौल तो जश्न की तैयारी में डूबा है
दबे पाँव आकर बसन्त के आने का
सन्देश थमाया है उसने मुझे !
लो, मेरी उदासी उड़न छू हो गई
और···
मैं होली के रंगों में डूब गई।

इन्द्रधनुष ख़ामोश सा···

अच्छा लगता है इन दिनों
ख़ामोश हो रहना।
अपनी ही परछाईं से
मन ही मन बतियाना।
कमरे में उतर आए
धूप के टुकड़े के
इन्द्रधनुष बनाना !
भरी भीड़ में एकाकी हो लेना !
दूधिया बादलों पर
मन चाहा अक्स तराशना।
दिनों की लकीरें बनाना-मिटाना।

नुस्ख़ा

सुख का एक नुस्ख़ा
ईजाद किया है मैंने !
दोस्तों और तमाम सम्बन्धियों के
दुःख-दर्द और आँसू
ब्लॉटिंग पेपर की मानिन्द
अपने भीतर सोख लो।
अपने आँसुओं को
शबनम की शक़्ल दो
ताकि किसी सूरज की गर्मी से
खुद-ब-खुद सूख जाएँ
उन्हें पोंछने की किसी को
ज़हमत न उठानी पड़े !